hearyasamaj.org

जिसने बदली दिशा जगत् की,
धरती और आकाश की ।
जय बोलो ऋषि दयानन्द की,
जय सत्यार्थ प्रकाश की ।।

।। ओ३म् ।।

वर्ष - ५८ अंक - ५
मूल्य : एक प्रति १० रुपये
वार्षिक : १००) रु०
आजीवन - १०००) रु०
प्रतिमास ता० १३ को प्रकाशित

आर्य-संसार

वैशाख-ज्येष्ठ : सम्वत् २०७२ वि० मई, २०१५

आर्य समाज कलकत्ता के सभागार में आयोजित '**आध्यात्मिक महिला सत्संग**' को दीप प्रज्जवलित कर उद्घाटन करती हुयी **श्रीमती पद्मिनी जायसवाल** (होटल हिन्दुस्तान इण्टरनेशनल) तथा साथ खड़ी है आर्य जगत् की सुप्रसिद्ध भजनोपदेशिका सुश्री **अञ्जलि आर्या** ।

thearyasamaj.org

आर्य समाज कलकत्ता की गतिविधियाँ

आध्यात्मिक महिला सत्संग :-

परिवारों में (विशेषकर महिलाओं और बच्चों में) वैदिक विचारधारा के व्यापक प्रचार-प्रसार को दृष्टिगत रखते हुए एक विशिष्ट कार्यक्रम 'आध्यात्मिक महिला सत्संग' का आयोजन ११ अप्रैल से १५ अप्रैल २०१५ पर्यन्त आर्यसमाज कलकत्ता के सभागार में किया गया। कार्यक्रम प्रत्येक दिन अपराह्न ३ बजे से ५ बजे तक आयोजित था। इस कार्यक्रम को अपने भजनों एवं उपदेशों से उपयोगी बनाया आर्यजगत् की सुपरिचित नवोदित भजनोपदेशिका सुश्री अञ्जलि आर्या (करनाल)जी ने।

इस कार्यक्रम को ११ अप्रैल २०१५ को अपराह्न ३ बजे दीप प्रज्जवलित कर उद्घाटित किया श्रीमती पद्मिनी जायसवाल जी (होटल हिन्दुस्तान इण्टरनेशनल) ने। श्रीमती पद्मिनी जायसवाल जी के परदादा जी ने दानापुर में महर्षि स्वामी दयानन्द जी के दर्शन किये थे। १२ अप्रैल को मुख्य अतिथि थीं श्रीमती ऊषा अग्रहरि जी। १३ अप्रैल को मुख्य अतिथि थीं श्रीमती शशि नागपाल तथा श्रीमती सुषमा अग्रवाल (पुत्री स्व० पूनम चन्द जी आर्य, पूर्व प्रधान आर्यसमाज कलकत्ता), १४ अप्रैल को मुख्य अतिथि की श्रीमती निर्मला आर्या (धर्मपत्नी श्री जगदीश प्रसाद जी आर्य) तथा १५ अप्रैल को मुख्य अतिथि थीं श्रीमती सुषमा जी गोयल। प्रत्येक दिन महिलायें बहुत अधिक संख्या में उपस्थित हुयीं। कार्यक्रम इतना प्रभावोत्पादक था कि सभी ने इसकी मुक्त कण्ठ से प्रशंसा की। सुश्री अञ्जलि आर्या जी ने अपनी वाणी और विचारों से कार्यक्रम को अत्यधिक प्रभावी बना दिया। कार्यक्रम की संचालिका थीं श्रीमती सुनीता जायसवाल। आर्य स्त्री समाज की प्रधाना श्रीमती आशा अरोड़ा, मन्त्रिणी श्रीमती कविता अग्रवाल तथा सभी सदस्याओं ने कार्यक्रम को सफल बनाने में अत्यधिक योगदान किया।

—०—

thearyasamaj.org

ओ३म्

आर्य-संसार

अकर्मा दस्युः

वर्ष ५८ अंक — ५
वैशाख-ज्येष्ठ २०७२ वि०
दयानन्दाब्द १९०
सृष्टि सं० १,९६,०८,५३,११६

मई — २०१५

आद्य सम्पादक
प्रो० उमाकान्त उपाध्याय
(स्मृति शेष)

●

सम्पादक :
श्री राजेन्द्र प्रसाद जायसवाल
सहयोगी संपादक :
श्रीमती सरोजिनी शुक्ला
श्री सत्यप्रकाश जायसवाल
पं० योगेशराज उपाध्याय

इस अंक की प्रस्तुति

१. इस अंक की प्रस्तुति — ३
२. अकर्मा दस्युः — ४
३. महर्षि वचन सुधा (४४) - प्रो० उमाकान्त उपाध्याय — ७
४. महात्मा हंसराज की विरासत और हम - प्रो० ओम कुमार आर्य — ९
५. आजकल टी०वी० चैनल पर धर्म को सही रूपों में वर्णन नहीं किया जाता - श्री हरिश्चन्द्र वर्मा 'वैदिक' — १३
६. एक पत्र ओमान/दुबई से - ज्ञानेश्वरार्य — १५
७. "मानव ! जियो छन्दमय जीवन" - देवनारायण भारद्वाज — १७
८. "महर्षि दयानन्द सरस्वती जी का आत्मिक दर्द" - पं० उम्मेद सिंह विशारद — २०
९. राजा गर्भस्थ माता के समान प्रजा का पालन करें - डॉ० अशोक आर्य — २३
१०. बच्चों का भविष्य एवं उनकी समस्याएँ - मृदुला अग्रवाल — २५
११. सूचना — २८

आर्य समाज कलकत्ता
१९, विधान सरणी, कोलकाता-७०० ००६,
दूरभाष : २२४१-३४३९ ***email : aryasamajkolkata@gmail.com***

'आर्य संसार' में प्रकाशित लेखों का उत्तरदायित्व सम्बन्धित लेखकों पर है।
किसी भी विवाद की स्थिति में न्याय क्षेत्र कोलकाता ही होगा।

theraryasamaj.org

२९

अकर्मा दस्युः

अकर्मा दस्युरभिनो अमन्तुः अन्यव्रतो अमानुषः ।
त्वं तस्यामित्रहन् वधर्दासस्य दम्भय ।।

ऋ० १०-२२-८

शब्दार्थ :-

अकर्मा	=	कर्म रहित, कामचोर	दस्युः	=	दस्यु, चोर, दुष्ट
अभिनः	=	हमारे चारों ओर	अमन्तुः	=	मान्यता-मर्यादा से रहित
अन्यव्रतः	=	विपरीत व्रतवाला	अमानुषः	=	मानवता रहित
त्वम्	=	तुम	तस्य	=	उसका, कर्महीनता का
अमित्रहन्	=	अमित्र, नाशक	वधः	=	वध
दासस्य	=	दास का	दम्भय	=	दमन करो

भावार्थ :- काम चोर दस्यु चारों ओर भरे पड़े हैं । ये दस्यु मान्यता-मर्यादा विरोधी और मानवता रहित होते हैं । हे मानव ! तुम ऐसे अमित्र दासों का, अमित्रता का दमन करो ।

विचार विन्दु :

१. कामचोर दस्यु (अनार्य) हैं और कार्यशील आर्य हैं ।
२. कामचोर और मर्यादा विरोध का संबंध ।
३. कामचोर व्रतहीन और मानवताहीन होता है।
४. कर्महीनता और व्रतहीनता का दमन क्यों ?

व्याख्या

वर्तमान में दस्यु का अर्थ, चोर, डाकू, लुटेरा आदि लगाते हैं। किन्तु वेद कामचोर, दूसरों की कमायी खाने वालों को दस्यु कहते हैं ।

इस मंत्र में परमेश्वर हमें सावधान करते हैं कि हमारे चारों ओर कामचोर, मान-मर्यादा को न मानने वाले भरे पड़े हैं । जो काम नहीं करता, वह 'दस्यु' है - 'अकर्मा दस्युः' । संसार में दो तरह के लोग हैं - कुछ कार्यशील हैं, काम करते हैं और कुछ कामचोर हैं, वे दूसरों के परिश्रम पर जीना चाहते हैं । अंग्रेजी में कहावत है - Some will work and some will play दूसरों के परिश्रम पर जीने वालों को अंग्रेजी में Parasite कहते हैं, उन्हीं को दस्यु कहा जाता है । यूं तो संसार का नियम है -

'नहिं कश्चित्क्षणऽमपि जातु तिष्ठत्यकर्मकृत्'

thearyasamaj.org
कोई भी व्यक्ति बिना काम किये तो एक क्षण भी नहीं रह सकता । कुछ न कुछ कार्य वह करता ही रहता हैं । व्यक्ति भोजन करता हैं, पानी पीता है, कपड़े पहनता है और अनेक ऐसे कार्य करता रहता है जिन्हें किये बिना जीवन नहीं चल सकता । ऐसे कामों को यहां नहीं गिन रहे हैं । काम है दायित्वपूर्ण उपयोगी, समाज के लिए लाभकारी काम । ऐसे कामों से जी चुराकर जीने वाला दस्यु है । ऐसे दस्यु, कामचोर जीवन की मान्यताओं, मर्यादाओं से रहित होते हैं । मर्यादाएं व्यक्तिगत और सामाजिक अनुशासन हैं। ये दस्यु मर्यादाहीन, अनुशासनरहित होकर जीते हैं । इनका निवास, इनका अड्डा मदिरालय, वेश्यालय, जुआ-घर आदि हैं । ये कर्म नहीं करते--कुकर्म करते हैं । इनमें से बहुत लोग यह समझते भी हैं कि हम दूसरों के परिश्रम पर जी रहे हैं, पर इनका जीवन निर्लज्ज, मर्यादाहीन ही बना रहता है । व्यक्ति और समाज की मर्यादाएं, नियम और अनुशासन, उन्नति और सुव्यवस्था के लिए होते हैं । किन्तु कर्महीन दस्यु जीवन में किसी भी नियम-अनुशासन का पालन नहीं करते । मंत्र कहता है कि ऐसे दस्यु अमन्ता, मननशीलता रहित, मूर्ख और स्वार्थी होते हैं । रावण ने सीता को बहुत समझाया था कि तू सारे व्रत अनुशासन को छोड़कर खाओ, पीयो और मौज करो । यही राक्षसों का धर्म है। किन्तु सीता ने अपनी मर्यादा को नहीं छोड़ा, वह आर्या थी । रावण राक्षस मर्यादाहीन था ।

ऐसे दस्यु मानवता 'रहित' विपरीत व्रत वाले - आचरण वाले होते हैं । व्यक्ति का व्रत - 'मातृवत् परदारेषु पर द्रव्ये लोष्ठवत्' । पराई स्त्रियों को माता, बहन, पुत्री समझो और पराये धन को मिट्टी समझो । परिवार का व्रत है - 'अनुव्रतः पितुः पुत्रः ।' पुत्र पिता के अनुकूल रहे । समाज का व्रत है सहृदयता, सुमनस्कता । समाज में इस भावना की रक्षा आवश्यक है ।

हिन्दी में एक बड़ी सुन्दर सूक्ति हैं -

'रूठै सुजन मनाइए, जौ रूठै सौ बार
रहिमन पुनि-पुनि पोइये टूटे मुक्ताहार ।'

मोतियों की माला टूट जाती हैं, तो मोती बिखर जाते हैं । समझदार व्यक्ति बिखरे मोतियों को फेंक नहीं देता, वह उन्हें सुदृढ़ सूत्र में पुनः गूंथ लेता है । इसी प्रकार पारस्परिक स्नेह, एक-दूसरे का सम्मान, प्रेम मानव-समाज के जोड़ने वाले सूत्र हैं। इन्हीं से व्यक्ति परिवार के साथ जुड़ता है और परिवार समाज के साथ जुड़ता है । इसकी रक्षा जरूरी है ।

मंत्र में यह भी कहा है कि व्रत और मर्यादाओं को तोड़ने वाले मानवताहीन होते हैं । उनको दबाना चाहिए । रहीम ने एक सूक्ति कही है -

'रहिमन ओछे नरन सौ, वैर भलौ न प्रीत
काटे चाटे स्वान के, दोऊ भांति विपरीत ।'

इस सूक्ति में मर्यादाहीनों से उपेक्षा का भाव बताया गया है। किन्तु मंत्र में यह कहा हैं कि ऐसे मर्यादाहीन लोगों का दमन करना चाहिए । यह राष्ट्र-धर्म है । इसी को क्षत्रिय-धर्म भी कहते हैं । जब तक दुष्टों का दमन नहीं होगा, समाज स्वस्थ नहीं रह सकता ।

thearyasamaj.org

संसार में कई प्रकार की नीतियां कही जाती हैं, सामनीति, दामनीति, दण्डनीति और भेदनीति। जो दस्यु हैं, व्रतहीन हैं, मर्यादाओं को तोड़ने वाले हैं उन लोगों को सामनीति से नहीं सुधारा जा सकता। उनके लिए तो दण्डनीति ही उचित है। इसीलिए मंत्र का उपदेश है कि व्रतहीन, मर्यादारहित दस्युओं का दमन कर देना चाहिए।

विशेष ध्यान देने की बात -

भारतवर्ष में 'फूट डालो और राज करो' की नीति के अनुसार आर्य और दस्यु, दो नस्लों की परिकल्पना पश्चिमी इतिहासकारों ने कर डाली। उन्होंने गोरी चमड़ी और लम्बी नाक वालों को आर्य और काली चमड़ी वाले दाक्षिणात्यों को दस्यु बताया। यह मंत्र बहुत सुस्पष्ट यह बता रहा है कि दस्यु कोई नस्ल या जाति नहीं है। आर्य भी कोई जाति नहीं है। सही बात यह है कि सदाचारी, सद्‌विचार, मर्यादा का पालन करने वाले, व्रतों में रहने वाले सज्जन आर्य हैं और इनके विपरीत आचरण करने वाले दस्यु हैं।

मंत्र में दस्यु की कई विशेषताएं बताई गई हैं - (१) दस्यु कर्महीन, दूसरों की कमाई खाने वाला, दूसरों के उपार्जन पर मौज करने वाला परजीवी (Parasite) होता है। ऐसे व्यक्ति किसी भी परिवार, समाज और राष्ट्र में अव्यवस्था और अशांति की ही सृष्टि करेंगे। (२) दस्यु की दूसरी विशेषता विचारहीनता, मर्यादाहीनता है। मर्यादाएं व्यक्तिगत भी होती हैं और सामाजिक भी होती हैं। मर्यादा का अर्थ ही है 'मर्यैं आदीयते' जिन नियमों को अपनी उन्नति और सुव्यवस्था के लिए मनुष्य अपने आप स्वीकार करता है, वे सब मर्यादाएं हैं। आज की भाषा में उन्हें वैयक्तिक, सामाजिक और राष्ट्रीय कर्तव्य कहा जाता है। दस्यु इन सब कर्तव्यों से रहित होता है। उसे कर्तव्य या दायित्व से कुछ मतलब नहीं रहता। दस्यु अपने स्वार्थ के लिए राष्ट्र, समाज को कुछ भी हानि पहुंचा सकता है। (३) दस्यु की तीसरी विशेषता है कि वह अन्यव्रत - दूसरे प्रकार के आचरण करता है। सज्जनों के व्रत हैं - सत्य, सदाचार, सामाजिक और राष्ट्रीय नियमों का पालन इत्यादि-इत्यादि। दस्यु को इन नियमों से कोई सरोकार नहीं। आज की भाषा में चोर, डाकू, लुटेरे, आतंकवादी, हफ्ता वसूलने वाले—सब दस्यु हैं।

मनुष्य जन्म से या स्वभाव से ही चोर, डाकू या मर्यादाहीन नहीं होता। प्रायः बुरी संगत में पड़कर ही लोग बिगड़ जाते हैं। अतः समाज और शासन का प्रथम कर्तव्य यह है कि शिक्षा और सामाजिक वातावरण मर्यादाओं को पालन करने का बनाया जाये।

मंत्र में दस्युओं के लिए दो दण्ड बताए गये हैं। प्रथम तो उनका दमन करके उन्हें शान्त कर देना और यदि सम्भव हो तो सज्जनों के समाज में सम्मिलित कर लेना चाहिए और यदि दमन सम्भव न हो तो समाज और राष्ट्र की रक्षा के लिए उनका वध भी कर देना चाहिए।

●

thearyasamaj.org

महर्षि वचन सुधा (४४)

– प्रो० उमाकान्त उपाध्याय

'संस्कार विमर्श'

''संस्कार' उसको कहते हैं कि जिससे शरीर, मन और आत्मा उत्तम होवे। वह निषेकादि श्मशानान्त सोलह प्रकार का है। इसको कर्त्तव्य समझता हूँ और दाह के पश्चात् मृतक के लिये कुछ भी न करना चाहिये।''

—सत्यार्थ० स्वमन्तव्य०

व्याख्या–ऋषियों की सभ्यता, संस्कृति में मनुष्य के जीवन के निर्माण के लिये कई प्रकार से उपाय बताये गये हैं। यह सर्वमान्य बात है कि मनुष्य इस सृष्टि का सर्वश्रेष्ठ प्राणी है। मनुष्य की श्रेष्ठता उसकी मानवता में है। अन्य सब प्राणी परमेश्वर की दी हुई प्रतिभा और गुणों के अधिकारी हैं। उनका ज्ञान नैसर्गिक होता है। पशु, गाय, भस का बच्चा जन्म के बाद बिना सिखाये पानी में तैर लेता है। चिड़ियों के बच्चे स्वभाव से ही उड़ना सीख जाते हैं। बया अपने सुन्दर घोंसले बिना सीखे ही बना लेती है। मधुमक्खियाँ स्वभाव से ही मधु बनाने की कला में दक्ष होती हैं। इसीलिये कहते हैं कि पशु-पक्षियों का जीवन नैसर्गिक ज्ञान से चलता है। उनमें सीखने-सिखाने का अवकाश, वैषयिक ज्ञान का अवकाश कम होता है। उन्हें थोड़ा ही ज्ञान दिया जा सकता है। उनमें थोड़े से ही संस्कार डाले जा सकते हैं।

मनुष्य की स्थिति पशु-पक्षियों से सर्वथा अलग है। इसमें नैसर्गिक स्वाभाविक ज्ञान, क्रिया बहुत सीमित है। फिर भी यह सर्वश्रेष्ठ प्राणी इसीलिये कहा जाता है कि इसे ज्ञान, बल, क्रिया, संस्कार आदि सिखाये जा सकते हैं।

संस्कार बड़ा व्यापक शब्द है इसका क्षेत्र—आयाम, शारीरिक, मानसिक, बौद्धिक भी होता है। शरीर का सुधार, शरीर में अच्छे गुणों को समावेश भी संस्कारों द्वारा होता है। प्रस्तुत प्रसंग में संस्कार शब्द इसी विशेष अर्थ में प्रयोग किया गया है। ऋषियों ने मनुष्य जीवन में अनेकों प्रकार की विशेषताओं को लाने के लिये सोलह संस्कारों का विधान किया है। प्रथम संस्कार गर्भाधान कहा जाता है। गर्भाधान के द्वारा स्त्री-पुरुष के संयोग से जीवात्मा के नये जीवन का आरम्भ माँ के पेट में हो जाता है। ऋषियों ने बहुत सोच, विचार, चिन्तन, अनुसंधान के पश्चात् इन संस्कारों की व्यवस्था बनायी है। गर्भ में ही जब बच्चा माँ के पेट में ही है तभी से उसके मानसिक और शारीरिक गुणों की वृद्धि के लिये संस्कार आरम्भ हो जाते हैं। पुंसवन और

thearyasamaj.org

सीमन्तोन्नयन, दो संस्कार गर्भ में ही हो जाते हैं । बारह संस्कार मनुष्य के जीवन में होते हैं और अन्तिम सोलहवाँ संस्कार, 'अन्त्येष्टि' मृतशरीर का दाह होता है । यह अन्तिम संस्कार है । इसके पश्चात् मनुष्य के शरीर से सम्बन्धित और कोई कार्य शेष नहीं रह जाता है । मध्यकाल में प्रेत कर्म बोलकर मृत्यु के पश्चात् मृतक के लिये पिण्डदानादि कार्य किये जाने लगे ।

स्वामी दयानन्द की सुस्पष्ट मान्यता है कि अन्त्येष्टि संस्कार के पश्चात् मृतक के लिये कुछ कर्त्तव्य, कर्म नहीं रह जाता है । यजुर्वेद के ४०वें अध्याय में सुस्पष्ट कहा गया है—'भस्मान्तं शरीरम्' भस्म कर देने के पश्चात् अर्थात् शरीर का अग्नि में दाह कर देने के पश्चात् कुछ भी कर्त्तव्य कर्म शेष नहीं रह जाता है । आजकल २—४ हजार वर्षों से मृतक के दाह के पश्चात् घण्ट बाँधना, पिण्ड दान करना, शैय्या दान करना, दशाह, त्रयोदशाह आदि बहुत सारे कार्य श्राद्ध के नाम पर मृतक के लिये किये जाते हैं । यह सारा श्राद्ध कर्म अवैदिक है और प्राचीन ऋषि-मुनियों ने इसकी संस्तुति नहीं की है । ऐसी पौराणिक कथाएँ भी मिलती हैं। जिनसे सिद्ध होता है कि श्राद्ध कर्म बेकार है । श्रीमद्भागवत में ग्रन्थ की महिमा में एक कथा आती है । धुंधकारी नाम का एक बड़ा दुष्ट था । वह मरकर प्रेत हो गया । प्रेतयोनि से उसका उद्धार करने के लिये उसके भाई गोकर्ण ने गया में श्राद्ध किया, किन्तु उसकी प्रेत योनि छूटी नहीं । श्रीमद्भागवत में बहुत साफ लिखा है—

'धुंधकारी प्रेतात्मा प्रोवाच पुरुतः स्थितः ।
गया श्राद्ध शतेनाऽपि मुक्तिर्मे न भविष्यति ।।'

अर्थात् गया में सौ बार श्राद्ध करने से भी मेरी मुक्ति नही होगी । यह श्रीमद्भागवत का प्रमाण है । ऐसे और भी अनेकों कथानक पुराणों में आते हैं जिनसे प्रकट होता है कि पिण्डदान, श्राद्धकर्म आदि व्यर्थ हैं ।

एक और ऐतिहासिक महत्व की बात है । स्वामी दयानन्द से पहले किसी ऋषि मुनि ने सोलह संस्कारों को एकत्र किसी ग्रन्थ में नहीं लिखा था । स्वामी दयानन्द ने पहली बार सोलह संस्कारों को अपनी प्रसिद्ध पुस्तक **संस्कार विधि** में एकत्र लिख दिया है। इस अपूर्व ग्रन्थ में स्वामी जी ने सभी संस्कारों की व्याख्या, उनमें कर्त्तव्य-कर्म हिन्दी में लिखा है । संस्कारों में जो मन्त्र आदि कर्त्तव्य हैं उन्हें वेद और गृहसूत्रों से संस्कृत में ही उद्धृत कर दिया है । संस्कार की महिमा, महत्व, करणीय कर्त्तव्य कर्म सब हिन्दी में लिख दिया है । इस दृष्टि से स्वामी जी का 'संस्कार विधि' ग्रन्थ जन साधारण के लिये बहुत उपयोगी हो गया है । यह स्वामी दयानन्द का जनसाधारण के लिए अपूर्व परोपकारी कार्य है ।

'संस्कार विधि' ग्रन्थ हमारे युग का हमारे लिए 'गृह्यसत्र' है।

-o-

thearyasamaj.org

महात्मा हंसराज की विरासत और हम

१५१वीं जयन्ती (१९.०४.२०१५) पर विशेष

– **प्रो० ओम कुमार आर्य**, उपमंत्री
आर्य प्रतिनिधि सभा हरियाणा, रोहतक

विरासत का सामान्य सा प्रचलित अर्थ है किसी के द्वारा छोड़ी गई सम्पत्ति जो उत्तराधिकार स्वरूप किसी वारिस (उत्तराधिकारी) को प्राप्त होती है । मैं विरासत के किसी कानूनी पहलू अथवा कानूनी स्थिति की विवेचना या विश्लेषण नहीं कर रहा हूँ । और न ही पूज्य महात्मा हंसराज ने कोई बड़ी भौतिक, आर्थिक संपत्ति अपने पीछे कभी छोड़ी थी जो कभी विवादास्पद रही हो । वे तो अपने प्रिय डी.ए.वी. के अवैतनिक सेवक रहे, ऋषि के अत्यन्त सादे, सरल, ध्येयनिष्ठ समर्पित सिपाही रहे जिन्होंने जीवन भर अपने को तप, त्याग, अपरिग्रहादि की भट्ठी में तपाया, ऋषि मिशन, वैदिक धर्म के प्रचार-प्रसार, आर्य समाज के यश एवं डी.ए.वी. आन्दोलन को प्राणपण से आगे बढ़ाया । इसलिये उनकी विरासत से मेरा अभिप्राय है उन द्वारा प्राप्त की गई उल्लेखनीय उपलब्धियों की अपार सम्पदा जिसकी हमें सुरक्षा भी करनी है और समृद्धि भी, उन द्वारा किये गये महान् कार्यों की लम्बी सूची जिसमें हमें बहुत कुछ और जोड़ना है, उनका सेवा कार्य जिसको निरंतरता से आगे भी चालू रखना है, डी.ए.वी. के सशक्त माध्यम से शिक्षा का प्रचार-प्रसार सुदूर कोनों तक करना है तथा सारांशतया यह भी कहा जा सकता है कि उनके वे सपने जो उनके जीवन में साकार नहीं हो पाये, वे सब विरासत के रूप में हम उत्तराधिकारियों को मिले हैं, उनको साकार करना हमारा दायित्व है । निष्कर्षतः महात्मा जी के आदर्श, उच्च नैतिक मूल्य, तप, त्याग, कर्त्तव्यनिष्ठा की उज्ज्वल परम्परा, समाज, देश, धर्म की सुरक्षा एवं कल्याण, उत्थान विषयक उनकी योजनायें — ये सब और अन्य भी बहुत कुछ उस विरासत में शामिल हैं जो उन इतिहास निर्माता महात्मा जी ने हमारे लिये छोड़ी है जिसे पूरी जिम्मेवारी से हमें न केवल सम्हालना है अपितु और अधिक सजाकर, संवारकर आने वाली पीढ़ियों को सौंपना है । 'विरासत को सम्हालना, आगे बढ़ाना और आने वाली पीढ़ियों को सौंपना' की यह उदात्त भावना अग्रलिखित वेद-मंत्र में भी व्यक्त की गई है —

ओ३म् तन्तुं तन्वन् रजसो भानुमन्विहि ज्योतिष्मतः पथो रक्ष धिया कृतान् ।
अनुल्बणं वयत जोगुवाम पो मनुर्भव जनयन दैव्यं जनम् ।।

ऋग्वेद १०.५३.६

अर्थात् अच्छे कार्यों का ताना बाना बुनते हुये, आकाशस्थ प्रकाशपुञ्ज भगवान् भास्कर का अनुकरण करते हुये, हम सब विद्वानों द्वारा निर्मित प्रकाशपूरित पथों का रक्षण करें । मनीषियों द्वारा छोड़ी गई विचार सम्पदा को अबाधगति से अधिकाधिक समृद्ध करें, मनुष्य बनें और श्रेष्ठ संतान को जन्म दें।

जिस उदात्त विरासत की ओर उपर्युक्त वेदमंत्र संकेत कर रहा है, मैं भी महात्मा जी की १५१वीं जयन्ती के निमित्त सें उसी पावन परम्परा के सम्यक् रक्षण, निर्वहण और आगे हस्तान्तरण की ओर अपने सुधी पाठकों का ध्यान आकृष्ट कर रहा हूँ । आइये, किंचित् विस्तार से विचार करें ।

thearyasamaj.org

पहले महात्मा हंसराज के बहुआयामी सेवाकार्य को ही लें। युवावस्था के रंगीन सपनों का निर्ममता से मर्दन करते हुये, इन्द्रधनुषी कल्पना के मोहक जाल से पूरी तरह पृथक रहकर अपने लिये सुख सुविधाओं का पूर्णतः परित्याग करके यह सेवा के 'अवैतनिक पथ' का महान् वीतराग पथिक 'तेन त्यक्तेन भुञ्जीथा' के आदर्श से लेशमात्र भी विचलित नहीं हुआ और लगभग २५ वर्ष की निष्काम सेवा तथा अनथक प्रयत्न से डी.ए.वी. संस्थाओं को गगनचुम्बी ऊँचाइयों तक पहुंचा दिया, उनका यह ऐतिहासिक सेवाकार्य एक ऐसी प्रेरणाप्रद विरासत है जिसको हम आज ठीक से नहीं सम्हाल पा रहे। मैं किसी एक को दोष नहीं दे रहा हूँ, वस्तुतः न्यूनाधिक दोष हम सबका है जिसके चलते संस्थाओं का बाहरी रूप तो जरूर सज रहा है, संवर रहा है किन्तु अंदर स्थित आत्मा दिन-दिन क्षीण और निस्तेज होती जा रही है। हमें सचेत होकर स्थिति को सम्हालना होगा अन्यथा महती विनष्टि वाला परिणाम हमारी प्रतीक्षा कर रहा है।

उन्होंने अकाल के समय में, यथा छोटा नागपुर, रियासत बीकानेर, गढवाल, अवध, राजपूताना, उड़ीसा, बंगाल आदि में जो अकाल पीड़ितों की सहायता की और करवाई वह अपनी मिसाल आप है। क्या हम भी इस प्रकार के पीड़ितों के प्रति संवेदनशील हैं, उनका दुःख बंटाते हैं, उनके आँसू पोंछते हैं ? यदि हाँ, तो हम महात्मा जी के सुयोग्य मानस पुत्र हैं, यदि नहीं तो हमें अपने आचरण में सुधार करना होगा। इसी प्रकार महामारी, बाढ़, भूकम्प आदि के अवसरों पर भी महात्मा जी पूरे दल-बल के साथ मौके पर पहुँच कर पीड़ितों को राहत उपलब्ध करवाते थे, जिसको आज हमें इस रूप में लेना चाहिये कि ऋषि के अनुयायी हम वैदिकधर्मी हर हालत में सामान्य जन के समीप रहें, आम आदमी का विश्वास जीतें तब जाकर हमें अपने मिशन में सफलता मिलेगी।

महात्मा जी के अन्तिम वार्तालाप (स्व० आनन्द स्वामी/उस समय श्री खुशहाल चन्द के साथ) के ये कतिपय अंश भी उनकी वैचारिक विरासत और सपनों को रेखांकित करते हैं —

मुझे प्रसन्नता है कि प्रादेशिक सभा का कार्य तुमने सम्हाल लिया है — वेद प्रचार की तरफ भी तुम्हारा ध्यान है, भविष्य में भी चाहे योगाभ्यास को छोड़ना भी पड़े तो भी वेद प्रचार का ध्यान रखना और भी 'कोई भी कार्य आर्य समाज के सिद्धांतों (वैदिक सिद्धांतों) के विपरीत कदापि न हो आदि'। आज वेद-प्रचार का एजेण्डा सर्वाधिक उपेक्षित एजेण्डा है। समाजों, मण्डलों, संगठनों सभाओं के शीर्ष अधिकारी पदलोलुपता की दलदल में धंसते चले जा रहे हैं, तिकड़मबाजी और ओछे हथकण्डे अपना कर अपने निहित स्वार्थों की पूर्ति में लगे हैं और वेद-प्रचार का कार्य उनकी प्राथमिकताओं की सूची में या तो है ही नहीं और है भी तो सबसे निचले स्थान पर है। कई बेचारों को तो यह भी नहीं मालूम कि वेद में मंत्र हैं या श्लोक, दोहे हैं या चौपाई। बस उनमें और तथाकथित संत ढोंगी रामपाल आदि में इतना ही अन्तर है कि ये आर्य समाज में घुसपैठ किये बैठे हैं और वे करौथा, बरवाला (अब जेल में) सरसा, व्यासादि में अपनी दुकानें चला रहे हैं। 'वेद-प्रचार' इन दो शब्दों का दायरा बड़ा विशाल और व्यापक है, यह विरासत भी है, योजना भी, सतत् चलने वाला अभियान भी, इसको पूरी सन्नद्धता,

thearyasamaj.org

तत्परता से जितना सम्हाला जायेगा, इसका संवर्द्धन, प्रवर्धन होगा उतना ही आर्य समाज सशक्त होगा, उतनी ही तीव्रगति से वैदिक ज्ञान विज्ञान जन-जन तक पहुँचेगा । ऐसा करना महात्मा जी के हम उत्तराधिकारियों का प्रथम सामाजिक एवं धार्मिक कर्त्तव्य है । इसके प्रति की गई उपेक्षा, बरती गई उदासीनता हमें बहुत महंगी पड़ने वाली है ।

महर्षि दयानन्द के महाबलिदान के पश्चात् आर्य समाज की कमान सफलतापूर्वक सम्हालने वाले हमारे उस समय के महान्तम एवं प्रथम नस्ल के गिने चुने नेताओं में महात्मा हंसराज का नाम अग्रगण्य था । उन्होंने जो योजनाएं बनाई उन सबको ठोस धरातल पर न केवल उतारा ही बल्कि अमली जामा भी पहनाया । शिक्षा, शुद्धि आन्दोलन, स्वाधीनता संग्राम में पूरा योगदान, बहुआयामी सेवाकार्य, सत्संग, स्वाध्याय, सम्मेलनादि के माध्यम से उन्होंने आर्य समाज, डी.ए.वी., ऋषि मिशन, वैदिक धर्म की विश्वसनीयता, प्रामाणिकता एवं प्रासंगिकता के प्रति लोगों को आश्वस्त किया, अपने साथ जोड़ा। इन सब प्रयासों का मिला जुला परिणाम था कि स्वतंत्रता प्राप्ति तक आर्य समाज की दुन्दुभि दिग्दिगन्त में बजती रही । स्वतंत्रता के पश्चात् शिथिलता आती गई जो आज चरम सीमा तक पहुंच गई है क्योंकि हम महात्मा हंसराज, गुरुदत्त, लाला लाजपत राय, स्वामी श्रद्धानन्द, पं० लेखराम आर्य 'मुसाफिर' आदि नेताओं को भूलने लगे हैं, उनकी विरासत की घोर उपेक्षा हम कर रहे हैं । महात्मा जी ने हममें नवजीवन का संचार करने हेतु यह नौ-सूत्री योजना दी थी —

१. वर्णभेद मिटाना, जातियों, उपजातियों के बंधनों को तोड़ना ।

२. दलितों का उद्धार, उन्नयन करना ।

३. परंपरागत जाति व्यवस्था के मूलभूत गुणों, विशेषताओं को चिन्हित करके उनके आधार पर व्यक्ति की योग्यता, उसकी कार्यक्षमता का भरपूर विकास करना ।

४. वेद-प्रचार और वेदाध्ययन को अधिकाधिक बढ़ावा देना ।

५. हिन्दू (आर्य) जाति में एकता स्थापित करना ।

६. हमारे धार्मिक, सांस्कृतिक, सामाजिक, राष्ट्रीय त्यौहार, पर्वादि की वैज्ञानिकता, उपयोगिता लोगों को समझाना, उनका महत्त्व, उनकी प्रासंगिकता स्पष्ट करना ।

७. मुस्लिम भाइयों की नमाज की तर्ज पर हिन्दुओं में सांझी, सामूहिक प्रार्थना की प्रथा प्रारम्भ करना ।

८. भूले भटके लोगों की घर वापसी करना, विशेषतः अनाथ, विधवाओं, दलितों पर विशेष ध्यान देना ।

९. हिन्दुओं में आई हीन भावना का उन्मूलन करना, उनको अपने धर्म/वैदिक धर्म की श्रेष्ठता का बोध करवाना आदि-आदि ।

कुल मिलाकर उपर्युक्त योजनाएं, लक्ष्य, चिंतन, प्राथमिकतायें आदि महात्मा जी की विरासत का हिस्सा है, जो उनके जीवन-काल में साकार हुआ वह इतिहास बन गया, हमारे लिये प्रेरणा बन गया। जो अधूरा रह गया उसे सिरे से चढ़ाना हमारा दायित्व ही नहीं प्रथम और मुख्य कर्त्तव्य है और उनकी

thearyasamaj.org

सबसे बड़ी सबसे महत्वपूर्ण, उनकी अपनी सर्वाधिक प्रिय विरासत है — डी.ए.वी. शिक्षण संस्थाओं का विशाल साम्राज्य, शिक्षा-जगत् में स्थापित अब तक का उज्ज्वलतम, बेजोड़ कीर्तिमान् । इसको सम्हालकर रखना, इसको राष्ट्रनिर्माण और वैदिक धर्म के प्रचार-प्रसार का सशक्त माध्यम बनाना ही डी.ए.वी. के स्वप्न-द्रष्टा, राष्ट्र और राष्ट्रवाद के कुशल शिल्पी महात्मा हंसराज को दी गई सच्ची श्रद्धांजलि होगी, उनकी विरासत की सुरक्षा, उसको सजाने संवारने की दिशा में सार्थक कदम होगा । आइए, उनकी १५१वीं जयन्ती पर उन्हें श्रद्धासुमन समर्पित करें —

राष्ट्रीय गौरव, गर्व के प्रतीक महात्मा हंसराज
अंधेरी रातों में जगमगाती लीक महात्मा हंसराज
उनका जीवन आदर्शों की खुली पुस्तक
धर्म-संस्कृति की व्याख्या सटीक महात्मा हंसराज ।

हमारा संकल्प है —

हम सदा तेरा अनुगमन करेंगे
तेरे बताये पथ से न कभी टरेंगे
जो सौंपी है तुमने हमें अनमोल विरासत
श्रद्धापूर्वक उसका रक्षण, प्रवर्धन करेंगे ।

१६०७/७ जवाहर नगर
पटियाला चौक, जींद
हरियाणा-१२६१०२
दूरभाष : ०१६८१-२२६१४७
मो० : ०९४१६२९४३४७

(पृष्ठ १४ का शेषांश)

आप मंदिर छोड़कर जंगल में ध्यान क्यों कर रहे हैं ? उत्तर में रामकृष्ण परमहंस कहे -- ओरे, माँ की आमार मंदिरेई थाके, माँ आमार सब जायगातेई आछे । 'या देवी सर्वभूतेषु शक्ति रूपेण संस्थिता, सर्वव्यापि जगत जननी ।' तात्पर्य यह कि काली तो एक माध्यम था, किन्तु उनके धारण और ध्यान में ईश्वर के प्रति एकाग्रता वैदिक था ।

पुराणों के कर्त्ताओं द्वारा रचे गये के अनुसार रक्तबीज को मारने के लिये महाशक्ति के रूप में काली प्रकट हुई थी । अब उसी शक्ति रूप को रक्षक आदि के नाम से उनकी मूर्त्ति बनाकर लोग पूजते रहते हैं ।

इसी प्रकार देवी पुराण के अनुसार महिषासुर को बध करने के लिये, देवी दुर्गा महाशक्ति के रूप में प्रकट हुई थी, इसलिये उनके भक्त लोग देवी दुर्गा दुर्गति नाशनी की प्रतिमा बनाकर पूजा पाठ करते हैं ।

दीपावली के दिन काली पूजा (बंगाल में) और महालया के दिन दुर्गा का पाठ ब्रह्ममूहुर्त में ऐसा किया जाता है, जिसके श्रवण से मन प्रसन्न हो जाता है । क्योंकि संस्कृत का शुद्ध उच्चारण ही ऐसा है ।

मु० पो० मुरारई,
जिला-बीरभूम (प० बंगाल)-७३१२१९
मो० - ८१५८०७८०११

thearyasamaj.org

आजकल टी० वी० चैनल पर धर्म को सही रूपों में वर्णन नहीं किया जाता

ले० – श्री हरिश्चन्द्र वर्मा वैदिक

धर्म का प्रचार इस प्रकार किया जा रहा है :— लक्ष्मी की पूजा कैसे की जायेगी ताकि धन की वर्षा हो । शनि महाराज कैसे प्रसन्न होंगे जिससे घर में शान्ति बनी रहे । शिवजी की पूजा करने से कितने प्रकार का लाभ हो सकता है । हनुमान जी की पूजा कैसे किया जायेगा । श्री गणेश, काली और दुर्गा की पूजा किस प्रकार किन पद्धतियों से की जायेगी । विद्या की प्राप्ति के लिये सरस्वती की पूजा कैसे की जायेगी ? इन सबके विधि-विधान बताने के लिये टी०वी० चैनेल पर पण्डित जी आते हैं और वेद विरुद्ध किन-किन पदार्थों से किन-किन श्लोकों से किन-किन् देवी-देवताओं के प्रतिमाओं की पूजा कैसे की जायेगी सब अलग-अलग बताते हैं ।

किन्तु यह सब धर्म का यथार्थ रूप नहीं है । वैदिक शास्त्र के अनुसार धर्म उसे कहते हैं — जो यम-नियमों के साथ धर्म के लक्षणों का पालन करते हैं एवं वैदिक मंत्रों से यज्ञ तथा सन्ध्योपासना करते हैं । अतः इन्हीं के प्रयोग से मनुष्य स्वयं को सदाचारी एवं अपने परिवार में सुख शान्ति ला सकता है ।

पांच यम :— तन्त्रा हिंसा सत्यास्तेय ब्रह्मचर्या परिग्रहाः यमाः (योग साधन)

(१) अहिंसा — मन, वचन, कर्म से किसी को दुःख न देना ।

(२) सत्य — मन, वचन कर्म से सत्य का व्यवहार करना ।

(३) अस्तेय — मन, वचन, कर्म से चोरी का त्याग करना ।

(४) ब्रह्मचर्य — अर्थात् उपस्थेन्द्रिय का संयम करना ।

(५) अपरिग्रह — न्यायपूर्वक भोग, लोलुपता व अन्याय से किसी वस्तु की इच्छा न करना ।

पांच नियम — शौच सन्तोष तपः स्वाध्यायेश्वर प्रणिधानानि नियमाः। (योग सा०)

(१) शौच-शरीर, मन, आत्मा तथा बुद्धि शुद्ध रखना ।

(२) सन्तोष — धर्म और परिश्रम से प्राप्ति में प्रसन्न रहना ।

(३) तप-धर्माचरण (योगाभ्यास) में संकट भी सहन करना, नित्य कर्मो को नियमपूर्वक पालन करना।

(४) स्वाध्याय — वेद, उपनिषदादि आर्ष ग्रन्थों का अध्ययन व मनन करना ।

(५) ईश्वर प्राणिधान — ईश्वर की भक्ति करना ।

धर्म के लक्षण —

धृतिः क्षमादमोऽस्तेयं शौचमिन्द्रिय निग्रह । धीर्विद्या सत्यम क्रोधो दशकं धर्म लक्षणम् । (मनु०६,९२) अर्थात् — ध्येय, सहनशीलता, मन को वश में रखना, चोरी न करना, पवित्रता, इन्द्रियों पर नियंत्रण रखना, बुद्धि का प्रयोग करना, यथार्थ ज्ञान प्राप्त करने में समय लगाना, सत्य बोलना, क्रोध न करना। ये धर्म के दश लक्षण है ।

अपने जन्मदाता माता-पिता के जीवित रहते उनका श्राद्ध अर्थात् श्रद्धा से मान-सम्मान और पहले

thearyasamaj.org

गुरु के समान उन्हें भोजन खिलाकर सबको भोजन करना चाहिये और बहुओं को चाहिये कि अपने सास-श्वसुर के आज्ञा का पालन करे, यह सब धर्म है। अतः जितने अच्छे कर्म हैं जिससे सबका भला हो वह धर्म है। मानव सेवा, तथा गिरे हुए को उठाकर उसे अस्पताल पहुँचाना यह सब धर्म है।

तप, किसे कहते हैं कार्येन्द्रिय सिद्धर शुद्धि क्षमा तपसः।। (योग, २१,८३) उपनिषद में कहा गया हैः — एतद्वै परमं तपो यं प्रेत मग्नावभ्यादधति ।। (बृहदरण्यकोपनिषद् — ५-११-१)

अर्थात् — रोग के कष्टों का सहना, प्रेत (मरे हुए की लाश) को श्मशान में ले जाना, चिता में अग्नि लगाना। ये महान् तप हैं। योग दर्शन और उपनिषद् के इन वाक्यों से स्पष्ट है कि तप, कठोरताओं के सहने, अशुद्धियों को दूर करके शरीर और इन्द्रियों पर अधिकार रखने तथा कठिन समस्याओं पर जनता की सेवा करने का नाम....है।

तप का यह अर्थ नहीं कि शरीर को भौतिक अग्नि में जलाते रहें किन्तु तप का सही अर्थ प्रत्येक दशा को सहन करना है। स्वयं तप कर दूसरों को प्रकाशित करना, प्राणायाम करना और अपने दृढ़ एवं सत्य संकल्प को न तोड़ना भी तप है।

ईश्वर प्रणिधान — अपने सभी कर्मों को ईश्वरार्पण कर देना, इसका प्रधान उद्देश्य है। इससे मनुष्य की आत्मा को शान्ति मिलती है। तात्पर्य यह कि अपनी सारी ममता तथा चिन्ताओं को ईश्वरार्पण कर उनसे अपने में निष्पाप और शुद्ध स्वरूप को ग्रहण करे।

घर-गृहस्थी में रहते हुए भी योगाभ्यास किया जा सकता है। उदाहरण के लिये १९वीं सदी में — 'रामकृष्ण परमहंस से एक भक्त ने पूछा—' महाराज। भगवन् ध्यान और गृहस्थ कर्म दोनों एक साथ कैसे हो सकता है। मुझे तो असंभव सा लगता है।

रामकृष्ण परमहंस ने कहा — गाँव की स्त्रियों को दूध बेचने के लिये शहर जाते देखा है? उनके सिर पर एक के ऊपर एक-एक, दो-दो, तीन-तीन दूध के भरे मटके होते हैं। रास्ते में वे आपस में घर-गृहस्थी की बातें करती जाती हैं, लेकिन उनका ध्यान मटकों की ओर लगा रहता है कि कहीं मटके गिर न जायें। ठीक इसी प्रकार अपना गार्हस्थ कर्तव्य निभाते जावो और प्रभु स्मरण भी करो।

बंगला इतिहास में रामकृष्ण के मत के बारे में लिखा है कि — वे भक्ति, त्याग और एकेश्वर के प्रति एकाग्रता का प्रचार करते थे, वे धर्म के सम्बन्ध में भेदाभेद दूर करके 'जितने मत उतने पथ' पर ईश्वर एक ही है, जिसे विभिन्न नामों से पुकारा जाता है।

कहा जाता है कि रामकृष्ण परमहंस काली के उपासक थे, किन्तु वे उस देवी को ईश्वर के समान मानते थे। आजकल के लोग जब तक काली स्थान में नहीं जाते तब तक पूजा पाठ नहीं करते। काली के भक्त भी बिना मन्दिर के एकान्त स्थान में जाकर उस देवी का ध्यान नहीं करते। किन्तु रामकृष्ण परमहंस जंगल में भी जाकर माँ का ध्यान किया करते थे।

जब उनके भगिना ने देखा कि मामा तो मंदिर में नहीं है, तब खोज करते-करते जंगल की ओर चले गये, देखते हैं कि रामकृष्ण माँ का ध्यान कर रहे हैं। ध्यान भंग होने पर जब भगिना ने पूछा मामा!

(शेष पृष्ठ १२ पर)

thearyasamaj.org

एक पत्र ओमान / दुबई से

– ज्ञानेश्वरार्य

आदरणीय श्रीयुत

सादर नमस्ते !

ईश्वरकृपयात्र कुशलं तत्रापि भवतु कामये ।

आर्य सज्जनों के आमंत्रण पर २३ मार्च को दुबई पहुँचा । यहाँ पर दर्शन अध्यापन, ध्यान, शंका समाधान तथा प्रेरणा देता हूँ । अवसर प्राप्त करके अन्य देशों में भ्रमणार्थ भी चला जाता हूँ । यह मेरी २१वीं प्रचार यात्रा है, खाड़ी में तीसरी बार आया हूँ ।

विदेशों में सार्वजनिक रूप से प्रतिदिन यज्ञ, सत्संग, प्रवचन के कार्यक्रम नहीं होते हैं । शनि या रवि या विशेष उत्सव में ही बड़े कार्यक्रम होते हैं । श्रोता ५० से १००-१५० तक भी हो जाते हैं । पारिवारिक सत्संग में १०-२०-३०-५० तक ही रहते हैं । भाषा का माध्यम हिन्दी ही मुख्य रूप से होता है गौण रूप से अंग्रेजी का भी प्रयोग करता हूँ । प्रवचनों में अधिकांश भारतीय ही होते हैं कभी विशेष कार्यक्रमों में विदेशी लोग भी भाग लेते हैं । जब समाज या परिवारों में व्यवस्था हो जाती है तो भोजन वहां पर अन्यथा होटल या स्वयंपाकी बन कर भोजन करता हूँ ।

विगत १५ वर्षों से अनेकों देशों में प्रचार, यात्रा करते हुये यह पाया कि किसी देश में समाज हो या नहीं, जहाँ आर्य हैं वहां विद्वान् प्रचारकों की आवश्यकता है, अमेरिका हो या योरोप, अफ्रीका हो या पूर्व के देश । दर्जनों समाजों वा नगरों में सैकड़ों की संख्या में आर्य (वैदिक धर्मी) विचारधारा वाले लोग रहते हैं, चाहे वे धन्धा करें या नौकरी, उनको प्रेरित करके एक स्थान पर सप्ताह में एकत्रित किया जाये तो थोड़े से ही काल में समाज की स्थापना हो सकती है, उसके माध्यम से अनेक प्रकार के धार्मिक कार्यक्रम बनाकर वैदिक धर्म का प्रचार-प्रसार किया जा सकता है ।

विद्वानों की मांग भी बहुत है और उपलब्धि भी बहुत है, बस कमी है तो इस बात की कि कोई माध्यम हो जो इस कार्य को सम्पन्न कर सके । भारत में अनुभवी, प्रौढ़, प्रचारकों की एक संस्था बनाकर जिसमें देश तथा विदेश दोनों के अधिकारी महानुभाव हों, प्रचारकों का चयन, नीति निर्धारण, दक्षिणा, मार्ग-व्यय, साधन-सुविधा, अवकाश, प्रचार के विषय, समय निश्चय, भोजन, आवास, वाहन, संदेश संचार आदि महत्वपूर्ण विषयों से सम्बन्धित लिखित विवरण बनायें । यदि आवश्यकता हो तो विद्वानों का कुछ काल के लिए शिविर (मार्गदर्शन) भी लगाया जा सकता है । उनमें से योग्य प्रचारकों का चयन करके उनसे लिखितरूप में अनुबन्ध कराकर प्रचारार्थ विदेश भेजा जाये ।

उचित तो यही है कि अधिकारी केन्द्रीय सत्ता के अन्तर्गत ऐसी संस्था बने, यदि ऐसा किन्हीं कारणों

thearyasamaj.org

से संभव न हो तो व्यक्तिगत रूप से विदेशी समाजों के अधिकारी महानुभावों का विश्वास सहयोग निर्देश प्राप्त करके भी ऐसी संस्था बनायी जा सकती है । विदेश प्रचारार्थ जाने वाले विद्वानों को विदेश में किन-किन बातों का विशेष ध्यान रखना आवश्यक है वे बातें अवश्य ही बता देनी चाहिए, जिससे भविष्य में कोई अनिष्ट, अभद्र, अव्यवहारिक, अशिष्ट घटना न घटे । अनुबन्ध से विद्वानों को यह प्रतीति न हो कि उनको बन्धक बनाया जा रहा है और ऐसी इतनी स्वतंत्रता भी न दी जाये कि वे स्वेच्छाचारी बन जायें ।

ऐसी माध्यम बनने वाली संस्था न होने पर योग्य विद्वान् स्वयं भी विदेश प्रचारार्थ जाने का साहस कर सकते हैं । विदेश में रहने वाले सामाजिक अधिकारियों के मन में प्रायः ऐसी आशंकाएं बनी होती है कि कैसा स्वभाव है, कैसा बोलते हैं, क्या सुविधाएं चाहिए और क्या अपेक्षाएं है ? आदि आदि । विदेश जाने वाले विद्वानों को चाहिए कि वे दान-दक्षिणा, साधन-सुविधा, यात्रा-व्यय, वाहन-भ्रमण आदि की याचना न करें, न प्रसंग बनाकर चर्चा करें । अपने व्यवहारों को स्पष्ट, सरल, विनम्र गंभीर बनकर करें । प्रवचन में विवादास्पद अप्रासंगिक, अनुपयुक्त, अनावश्यक विषयों को न उठावें । कभी, कहीं, किसी विषय में अवैदिकता, अप्रामाणिकता प्रतीत हों तो तत्काल खण्डन, विरोध, परिवर्धन, परिवर्तन न करें । कर्मकाण्ड में कुछ लचीलापन बना लें । पश्चात् अवसर मिलने पर लोगों को समझा कर सुधार किया जा सकता है ।

अपने विषय में, विदेश स्थित अधिकारियों को विश्वास दिलाने हेतु भारत के प्रतिष्ठित विद्वानों, अधिकारियों की संस्तुति भी प्राप्त की जा सकती है, यदि यात्रा व्यय प्रारम्भ में स्वयं ही (किसी से सहयोग प्राप्त करके) वहन किया जाये तो अति लाभकारी होगा । एक बार विदेश जाने पर प्रवचन, व्यवहार, विद्वता, त्याग, तपस्या, निष्कामता का प्रभाव पड़ेगा तो स्वतः लोग हर प्रकार का सहयोग करेंगे, सुविधाएं प्रदान करेंगे, बुलायेंगे ।

हे प्रभो ! देश और विदेश में स्थित वैदिक धर्म के कर्णधारों, अधिकारियों, विद्वानों के हृदयों में ऐसी प्रेरणा, उत्साह, आशा के भाव भरों कि वे संगठित होकर, नीति-निर्धारण करके, विद्वानों का निर्माण, विदेश में प्रेषण करके, सहजता से वैदिक धर्म के शाश्वत सिद्धान्तों का प्रचार-प्रसार विश्व भर में करा दें और आर्यो का अखण्डित चक्रवर्ती साम्राज्य पुनः स्थापित हो जाये इसी हार्दिक कामना-आशा विश्वास के साथ — ज्ञानेश्वरार्य ।

वानप्रस्थ साधक आश्रम
आर्यवन, रोजड, पो०सागपुर
जिला-साबरकांठा, (गुजरात)
पिन-३८३३०७

—o—

thearyasamaj.org

''मानव ! जियो छन्दमय जीवन''

– देवनारायण भारद्वाज

संसृति अर्थात् संसार जो सदैव सरकता रहता है, रुकता नहीं, वह एक काव्य या लय के साथ आगे बढ़ता रहता है । सागर-सरिता के किनारे निकल जाइए तो उनकी लहरें एक ध्वनि-संगीत छेड़ती चलती हैं, उद्यान में निकल जाइए तो वृक्षों के पत्ते हवा की तरंगों से मिलकर एक गीत गुंजित करते मिलते हैं, पौधों के पुष्पों पर रंग-बिरंगी तितलियाँ एवं भ्रमर अपने गुंजन के साथ नृत्य करते दिखाई देते हैं । आज के अतीव कष्ट कर पर्यावरण के प्रदूषण के बाद भी अनेक स्थलों पर प्रातः सायं पक्षियों के समूह कलरव – कीर्तन करते मिलते हैं । वेद भगवान बोल पड़ते हैं —

अन्ति सन्तं न जहाति अन्ति सन्तं न पश्यति ।
देवस्य पश्य काव्यं न भमारं न जीर्यति ।। (अथर्व० १०.८.३२)

मनुष्य परमेश प्रभु को कभी त्याग नहीं सकता, क्योंकि वह उसके घनिष्ठ सम्बन्ध से जुड़ा-सन्निकट है – यहाँ तक कि वह उसके आत्मा में ही व्याप्त है, पर आश्चर्य यह है कि मनुष्य उसकी ओर देखता नहीं । जो आत्मानुभूति कर लेते हैं वे तो बधाई के पात्र हैं, किन्तु जो अपनी प्रत्यक्ष आँखों से ही देखना चाहते हैं, वे उसकी सृष्टि रूपी काव्य को देख लें । गुणों का आभास करके गुणी के साथ प्रवास किया जा सकता है । मनुष्यकृत नाटक एक दो बार देखने पर ही पुराना पड़ जाता है, किन्तु यह ईश्वरीय काव्य कभी पुराना नहीं पड़ता और कभी मरता भी नहीं, और न जीर्ण-शीर्ण होता है । हे मनुष्य ! तू ईश्वर के वेद काव्य और इसी के आधार पर निर्मित सृष्टि काव्य को देखता हुआ – इसी में सृष्टिकर्ता परमेश्वर के दर्शन किया कर । 'वैदिक विनय' में आचार्य अभयदेव विद्यालंकार ने कुछ ऐसा ही दिग्दर्शन कराया है । जब यह संसार व जीवन प्रभु का एक काव्य है तो इसमें कोई लय व छन्द होना चाहिये । इसका संकेत हमें वेद मन्त्र से मिलता है :–

छन्दांसि यज्ञे मरूतः स्वाहा मातेव पुत्रं पिपृतेह युक्ताः ।।

(अथर्ववेद ५.२६.५)

सृष्टि काव्य का अनुगमन करते हुए हम जीवन को यज्ञ बनायें अर्थात् प्रभु, प्रजा व प्रकृति का पूजन अर्थात् समन्वय व उपयोग करना सीखें, साथ ही बड़ों से सम्मान का व छोटों से स्नेह का संगतीकरण करते हुए अपने द्वारा कमाई सम्पदा का कुछ अंश परहित अर्थात् दान में लगाने वाले बनें । अपनी प्राण ऊर्जा को राष्ट्रहित में आहुत करते हुए अपनी पूर्णता या सफलता इस बात में समझे जिस प्रकार कोई माता पुत्र का पालन व पूर्ण करती है । यह प्रक्रिया दोनों ओर से चलती है अर्थात् माता से पुत्र की ओर और पुत्र से माता की ओर । जिन दिनों ये पंक्तियाँ अंकित की जा रही हैं, उन दिनों अमर शहीद पं० रामप्रसाद बिस्मिल के बलिदान के समारोह मनाये जा रहे हैं । उन्होंने अपनी ओजस्वी कविता में यही भाव भर दिये थे । यथा –

खेलेने दो आज नाव कल कर पतवार गहे न गहे ।
जीवन सरिता में शायद फिर ऐसी रसधार बहे न बहे ।

thearyasamaj.org

अन्तिम साँस निकलने तक, बिस्मिल की अभिलाष यही,
तेरा वैभव अमर रहे माँ हम दिन चार रहें न रहे ॥

प्रजा-पुत्र अपनी मातृभूमि से जीवन प्राप्त करते हैं तो उस मातृभूमि के स्वाभिमान की रक्षा के लिए काव्य व गीत गाते हुए बलिदान होने को उद्यत हो उठते हैं । उत्सर्ग की कठोर भावना की ओर अधिक न बहते हुए सृष्टि सृजन के मनोहारी काव्य की ओर वापिस लौटते हैं । राजा भोज सृष्टि व काव्य दोनों के प्रेमी थे । वे सृष्टि में काव्य और काव्य में सृष्टि का अवलोकन कर हर्षित हुआ करते थे । इस सम्बन्ध में कोई कवि उनके दरबार में काव्य पाठ करता था तो उसे एक लाख स्वर्ण मुद्राओं का पुरस्कार दिया करते थे । सृष्टि के दृश्यों को देखते हुए चार मित्र अपनी एक-एक पंक्ति बनाकर दरबार में पहुँच गये । उन्होंने जैसा देखा वैसा ही राजा के सामने बोल दिया। एक ने अपनी पंक्ति सुनाई – ''रहैटा धनर-धनर धन्नाय'' दूसरे ने बोला – कोल्हू का बैल खड़ा भूसा खाय, तीसरे ने सुनाया – तरकस बाँधे तरकस बन्द, तभी चौथे ने अपनी काव्य पंक्ति ''राजा भोज है पुनो के चन्द'' सुनाई ।

चौथे व्यक्ति की पंक्ति को सुनकर राजा आक्रोशित हो उठे । उन्होंने कहा उपरोक्त तीनों की पंक्तियाँ तो ठीक हैं, उनमें तालमेल है किन्तु चौथे की पंक्ति चाटुकारिता की द्योतक है । इसलिए कविता अपूर्ण रहने के कारण पुरस्कार तो नहीं दिया जायेगा, प्रत्युत दण्ड दिया जायेगा । तभी चौथा काव्यकार बोल उठा, महाराज यह पंक्ति मेरी नहीं है अपितु आपके कवि मंत्री ने बदल दी है, क्योंकि मेरी पंक्ति को वे शोभाजनक नहीं मानते थे और कहते थे इसे सुनाओगे तो राजा रुष्ट होंगे और तुम्हें जेल में पहुँचा देंगे, राजा ने आदेश दिया कि अपनी मौलिक पंक्ति सुनाओ । उसने अपनी पंक्ति जोड़कर चारों पंक्तियाँ इस प्रकार दोहरा दीं –

रहैटा धनर - धनर धन्नाय,
कौल्हू का बैल खड़ा भूसा खाय ।
तरकस बाँधे तरकस बन्द,
राजा भोज हैं मूसल चन्द ॥

यह सुनकर राजा भोज मुस्करा दिये और प्रसन्न होकर वाह-वाह करने लगे और इन मूर्खों को एक लाख के दान की आज्ञा कर दी । राजा के कवि मंत्री ने इन कुपात्रों को दान देने का कारण पूछा तो उन्होंने गम्भीर होकर उत्तर दिया – ''आज तक जो कवि आये, उन्होंने मेरे अभिमान और अज्ञान को ही बढ़ाया, किसी ने मुझे बलि व विक्रम के समान और किसी ने मेरे प्रताप को सूर्य एवं चन्द्र से भी अधिक बढ़ा दिया । किन्तु जिन्हें तुम मूर्ख कहते हो, उन्होंने ठोकर लगाकर मुझे जगा दिया । मैं स्वयं को मूसलचन्द ही समझता हूँ । मूसल धान को कूटता ही रहता है परन्तु उसे चावल का रस नहीं मिलता । मैं संसार रूपी ओखली में कुटाई-पिटाई ही करता रहा, परलोक के लिए मैं कुछ नहीं कर सका । अब मुझे सावधान होना है और आत्मज्ञान को प्राप्त करना है। इन्होंने ठीक ही कहा है कि वीर लोग इस संसार में मृत्यु से मुकाबले के लिए ज्ञान से भरा तरकस बाँधते हैं और अविवेकी विलासीजन कोल्हू के बैल की भाँति खड़े-खड़े भूसा का भोग करते रहते हैं । यह संसार का रहट चक्र चल रहा है । ऊपर की बल्टियाँ खाली हो जाती हैं, नीचे की भर जाती हैं । फिर वे ऊपर आती हैं और खाली हो जाती हैं । इसी प्रकार आज कोई ऊपर है, अगले

thearyasamaj.org
क्षण नीचे, आज भरा है कल खाली । सम्पत्ति की ऐसी ही अस्थिर हरियाली है । राजा भोज का यह निष्कर्ष सुनकर दरबार दंग रह गया, पं० बिहारीलाल शास्त्री काव्यतीर्थ का यह संदर्भ उनके दृष्टान्त सागर से बूंदें लेकर आप तक पहुँचा दिया है । ।''

प्रकृति व परमेश्वर की काव्य-कृतियाँ सर्वत्र बिखरी रहती हैं ।

मंत्र – अथर्ववेद (१८.१.१७) यही संकेत कर रहा है ।

त्रीणिच्छन्दांसि कवयो वियेतिरे पुरूरूपं दर्शतं विश्वचक्षणम् ।
आपो वाता ओषधयस्तान्येकस्मिन भुवन आर्पितानि ॥

तत्वदर्शी पुरुष विभिन्न प्रकार यत्न करते और देखते हैं कि अनन्त रूपों में दर्शनीय पदार्थ आनन्द की मर्यादा में रहते हुए जन साधारण के लिये अभिलषित होते हैं । वे तीन पदार्थ जल, वायु तथा ओषध हमारे लिये वांछनीय हैं और ये तीनों एक ही भवन में ठहरे रहते हैं और हमें मिलते रहते हैं । इनको छन्द क्यों कहा ? इसीलिए कि इनका मर्यादा व अनुशासन में रहकर प्रयोग किया जाय । पीने के लिए जल, श्वास लेने के लिए वायु और आहार के लिए अन्न, प्राणीमात्र के लिये जीवनाधार हैं । जैसे – किसी कविता अथवा गीत के छन्द में एक मात्रा भी न्यूनाधिक हो जाती है तो उसका छन्द असन्तुलित होकर कर्ण-कटु हो जाता है वैसे ही इन तीनों पदार्थों का न्यूनाधिक प्रयोग भी शरीर के लिये हानिकारक हो जाता है । इतना ही नहीं व्यक्ति आह्लाद के स्थान पर अवसाद में डूब जाता है । वर्तमान विस्तृत प्रीतिभोजों में ऐसे ही कुछ दृश्य उपस्थित होते हैं जिनमें व्यंजनों की भरमार होती है जो पेट में भर लिये जाते है वायु और जल के लिये पेट में स्थान ही नहीं बचता है । इन पदार्थों के अपमिश्रण की बात तो पृथक है ।

जैसा खाये अन्न, वैसा बने मन, जैसा पिये पानी, वैसी बने वाणी और जैसी हो वायु वैसी हो आयु । छन्द अर्थात् मर्यादित आनन्द या सुख के लिये इनके उपभोग का ध्यान रखना आवश्यक है अपमिश्रण ही नही, इनके संग्रहण का स्रोत कितना सात्विक है – यह भी व्यक्ति के चरित्र का निर्माण करता है । एक राजा ने एक सन्त को अपने राजमहल में ठहराया । उनका खूब स्वागत सत्कार किया । सन्त उसी स्नानागार में स्नान करते थे जिसमें राजा व रानी भी स्नान करते थे । सन्त राजमहल से विदा हो गये पता चला कि रानी का बहुमूल्य हीरों का हार गायब है । खूब खोजने के बाद भी नहीं मिला । यकायक एक दिन वही सन्त वापस लौटे और राजा का गुम हुआ हार उन्हें पकड़ा दिया । राजा प्रसन्न हुए और बोल पड़े – आश्चर्य ! यह हार आपके पास कैसे ? मैने ही चुराया था यह हार । आपके ऊपर मैं सन्देह कर ही नहीं सकता था, फिर लौटाने क्यों आ गये । राजन् ! आपने जो अपने राजकोषीय अन्न से मेरा आतिथ्य किया था, सात्विकता की उपेक्षा कर मैं उसे खा गया । मेरा मन दूषित हुआ और मैं चोर हो गया । निरन्तर हुए भयंकर दस्तों से जब उसका दुष्प्रभाव जाता रहा और मैं इस हार को वापस करने आ गया । सारांश यह है कि संसार एवं सृजक का काव्य सहज रूप में प्रवाहित होते रहने पर ही सबका कल्याण है, इसका छन्द भंग होने पर पर्यावरण का ही नहीं प्राणिमात्र का विनाश अवश्यम्भावी है ।

वरेण्यम् अवन्तिका (प्रथम)
रामघाट मार्ग, अलीगढ़
पिन-२०२००१ (उ०प्र०)

thearyasamaj.org

''महर्षि दयानन्द सरस्वती जी का आत्मिक दर्द''

– पं० उम्मेद सिंह विशारद

जन साधारण का विचार है कि परमात्मा अवतार धारण करके पृथ्वी पर जन्म लेते हैं यह अज्ञान है, क्योंकि अजन्मा, अव्यय, निराकार, सृष्टिकर्ता ईश्वर साकार कैसे हो सकता है? किन्तु यह भी सत्य है कि मोक्ष से लौट कर मुक्त आत्मा अधर्म का नाश करने के लिये संसार में जन्म लेती है। संसार में मुख्य जन्म दो प्रकार का होता है । एक कर्मबद्ध जीवन और दूसरा कर्मों के बन्धनों से मुक्त जीवन । मर्यादा पुरुषोत्तम श्रीराम, योगीराज श्रीकृष्ण में व महर्षि दयानन्द सरस्वती में अन्तर था तो वह यह था कि श्री राम व श्रीकृष्ण जीवन भर सत्य के लिये लड़े, कामनाओं के लिये लड़े तथा महर्षि दयानन्द ऋत सत्य व निष्काम के लिये लड़े व मरे । यह विचारणीय बात है ।

इस लेख में मैंने कुछ महर्षि दयानन्द जी के आत्मीय दर्दों का उल्लेख किया है । सुधी पाठक प्रेरणा लेकर अन्यों को भी प्रेरित करेंगे ।

नरबलि अंधविश्वास का दर्द

महर्षि दयानन्द जी कहते हैं कि एक दिन की घटना को मैं भूल नहीं सकता । शाम होने वाली थी, सामने नदी थी और अमावस्या की रात जाने वाली थी, सोचा रात किस रूप में बिताऊँ। इतने में दूर से आवाजें आ रही थी, एक दस वर्ष के बालक को लोग नहला रहे थे और स्त्री पुरुष नाच रहे थे, मैं जिज्ञासावश वहाँ पहुँचा, पता चला आज अमावस्या है और महाकाली की गुफा में मध्यरात्रि को इस बालक की बलि दी जायेगी । इसके माता-पिता का वंश धन्य हो जायेगा और इसके पिता को पुजारियों ने पचास रुपये दिये थे और मान्यता थी कि यह बालक देह छोड़कर गन्धर्व लोक चला जायेगा ।

इस बात को सुनकर मेरे मन में तीन चिन्ताएँ हुई —

१. मेरी माता ने मुझ पुत्र को खोकर ही देहत्याग किया था । यह माता अपने बालक के बलिदान से कैसे जीवित रहेगी ?

२. इस महापाप के दण्ड भोग के लिये ही हमारी पुण्य भूमि धीरे-धीरे विदेशी वणिकों के कंवल में जा रही है ।

३. धर्म के नाम पर ऐसे महापाप ऋषि मुनियों के देश में कैसे चालू हो गये ? यह काल भैरव मन्दिर फतेहपुर के धर्मपुरी पुनघाट में स्थित है । इस शोभायात्रा में मैं भी चलने लगा । अवसर देखकर पुरोहित से कहा इस बालक को छोड़ दो और मेरी बलि दे दो । मैं भी ब्राह्मण

thearyasamaj.org

पुत्र हूँ। पुजारी बोले बड़े पुजारी की आज्ञा से ही विचार किया जा सकता है । वहाँ भयंकर भीड़ थी, पचास आदमी नंगी कटार लेकर नाच रहे थे । मेरी प्रार्थना स्वीकार हो गयी । मुझे नहला कर कुमकुम लगाया गया । खड़ग की पूजा हुई । काल भैरव के सम्मुख काठ की वेदी में मेरा सिर रखकर पुरोहित पाठ करने लगे । चारों आर काल भैरव की जय के नारे लगने लगे । मैं चारों ओर देखकर मरने के लिये तैयार हो गया । पुरोहित के कान में मुंह लगाकर मंत्र पाठ किया और खड़ग घातक के हाथों में दे दिया । मेरी आँखों में कसकर पट्टी बाँधी गयी, बस बलिदान बाकी था ।

लेकिन अचानक बन्दूक की तीन गोलियों की आवाज आयी, साथ ही लोग भागने लगे, चिल्लाकर कहने लगे, मरहटी फौज आ गयी है । सभी भाग गये । मैं अकेला बलिदान लक्कड़ से बंधा रह गया । उसी समय सिपाहियों ने मझे मुक्त कर दिया । पता चला महाराष्ट्र सरकार ने बलि प्रथा पर प्रतिबन्ध लगा रखा है और यह अमावस्या में मन्दिरों में भ्रमण करते हैं । मैंने ईश्वर से कहा हे प्रभु ! मुझसे क्या कराना चाहते हैं ? जो कि आप बार-बार मुझे प्राण दे रहे हैं ।

गंगा किनारे घटिया घाट की घटना का दर्द

महर्षि दयानन्द एक बार फर्रूखाबाद के निकट घटिया घाट के किनारे ध्यान मग्न बैठे थे। उसी समय एक स्त्री अपने मरे हुए बच्चे को लेकर आयी और उसने अपने मरे हुए बच्चे को पानी में डाल दिया । छपाक की आवाज से महर्षि का ध्यान उस ओर गया और देखा कि वह स्त्री बच्चे का कफ़न उतार रही है । कफ़न उतार कर चलने लगी तो महर्षि ने हाथ जोड़कर कहा माँ ! गंगा में क्या डाल दिया ? उस स्त्री ने रोते हुए कहा कि यह मेरा लड़का है । मैं विधवा स्त्री हूँ, निर्धन हूँ । धनाभाव से इसका इलाज न करा सकी । महर्षि ने कहा, जिस ईश्वर ने दुःख दिया, वही सुख भी देगा । परन्तु आपने कफ़न क्यों उतारा है । स्त्री ने कहा मैं निर्धन हूँ, कफ़न के लिए मेरे पास धन नहीं था । इसलिए अपनी साड़ी को आधा फाड़कर कफ़न बना लिया था । मैंने सोचा बच्चा तो वापिस आयेगा नहीं मुझे तो यहीं रहना है तो समाज में नग्न कैसे रहूँगी ? इसलिए मैंने कफ़न उतार लिया इसे फिर से साड़ी से जोड़ दूँगी । ऋषिवर का हृदय द्रवित हो गया, आँखों में आँसू बह निकले। पता चलता है कि ऋषि के दिल में देश व समाज के प्रति कितनी वेदना थी ।

एक हूक सी दिल में उठती है, एक दर्द जिगर में होता है ।
हम रात को उठकर रोते हैं, जब सारा आलम सोता है ।

मान्य पाठक ! हम ऋषि के किस-किस दर्द की बात करें, वह तो पूर्ण रूप से दर्द निवारक देवता थे । एक छोटा सा दर्द का वर्णन और करते हैं ।

thearyasamaj.org

कोढ़ी को उठाना और उसका दर्द समझना

गुजरात के सोमनाथ मन्दिर में मेला लगा हुआ था, मेले के बाहर एक कोढ़ी पड़ा हुआ था। कोई कहता था मर गया, कोई कहता जिन्दा है, पता चला पुलिस ने मारते-मारते बाहर निकाल दिया है और कोई कहता था पैरों में रस्सी डालकर बाहर नदी किनारे छोड़ दो । मैंने समझ लिया, यह आदमी अभी जिन्दा है । इसके सारे शरीर में खून और पीप निकल रहा है । इसीलिए किसी ने सहायता नहीं दी । मैंने कपड़ा भिगोकर उसके मुंह में पानी डाला, तब उसने आँखें खोल दी थीं, तब तक पुलिस भी पहुंच गयी थी, मैंने कहा मेले में चिकित्सा व्यवस्था कहां है और इसको छोड़कर जाना भी ठीक नहीं था । (मैंने सहोसि सहो मयि देहि) मंत्र बोलकर कोढ़ी को पीठ के ऊपर उठाकर चिकित्सा केन्द्र में भर्ती करवा दिया, विदाई के समय उसने कहा बाबा मुझे मरने का आशीर्वाद दो और उसने देह छोड़ दिया । मैंने नदी में स्नान किया और योग गुरुओं की खोज में निकल पड़ा ।

महर्षि के अन्य दर्दों का संकेत

मैंने छोटे-छोटे उदाहरण दिये । महर्षि दयानन्द का तो सम्पूर्ण जीवन का दर्द तो सत्य की स्थापना करना था । उन्होंने ईश्वर के सत्य के दर्शन कराये । उन्होंने पंच महायज्ञ के सत्य का ज्ञान दिया । उन्होंने जो मान्यताएँ व कर्म मानव समाज को भयंकर हानि पहुँचाते थे, उस दर्द को समझा। जैसे ईश्वर के नाम पर पशुबलि, जाति-पांति का छुआछूत का चलन, सती होने की कुप्रथा, विधवा का अभिशाप, कपोल कल्पित पौराणिक अवैदिक अनार्ष ग्रन्थों से मानव मात्र को हानि, मृतक भोज, काल्पनिक देवी देवताओं की पूजा, राष्ट्र की परतन्त्रता का कारण माना और जिन अनेक कुप्रथाओं द्वारा समाज खोखला होता जा रहा था । इस दर्द को समझा और उसका निराकरण भी किया।

युगों बाद धरती पर ऐसे महापुरुषों का आगमन होता है । तभी तो टंकारा की शिवरात्रि बोध रात्रि बन गयी, जिसने सारे संसार का अन्धकार ही मिटा दिया । उस देवता ने एक निरन्तर ऋत सत्य का प्रचार करने हेतु आर्य समाज जैसे सर्वोच्च संगठन का गठन किया । धन्य हो ऋषि दयानन्द आपने अपने को बार-बार विष देने वालों को भी क्षमा करते हुए उनके दर्दों को समझ कर ऋत सत्य के लिये अपने प्राण न्यौछावर कर दिये ।

वैदिक प्रचारक
गढ़ निवास मोहकमपुर
देहरादून (उत्तराखण्ड)
मो:- ९४११५१२०१९

—o—

thearyasamaj.org

राजा गर्भस्थ माता के समान प्रजा का पालन करे

– डॉ० अशोक आर्य

राजा अपनी प्रजा का पिता के समान पालन करता है इसलिए पिता कहा गया है किन्तु राजा अपनी प्रजा का पालन माता के सामान भी करता है । वह बाल्यकाल से ही माता के समान प्रत्येक कदम पर अपनी प्रजा के प्रत्येक अंग रूप नागरिक को अपनी अंगुली पकड़ने के लिए देता है तथा पग पग पर उसका मार्गदर्शन करता है । यहाँ तक कि जिस प्रकार माता अपनी संतान को नौ महीने तक अपने गर्भ में रखती है, उसी प्रकार ही प्रजा के लिए राजा माता के समान होता है तथा यह सम्पूर्ण राज्यक्षेत्र उसके गर्भ के समान ही होता है, जिसमें रहते हुए उसकी प्रजा ठीक उस प्रकार विकास करती है जिस प्रकार माता के गर्भ में उसकी संतान विकास को प्राप्त होती है । इस सम्बन्ध में वेद का मन्त्र इस प्रकार उपदेश कर रहा है :-

विश्वस्य केतुर्भुवनस्य गर्भऽआ रोदसीऽअपृणाज्जायमानः ।
ड्ंं चिदद्रिमभिनत् परायञ्जाना यदग्निमयजंत ।। यजु० १२.२३, ऋग्० १०.८५.६

मन्त्र इस सम्बन्ध में उपदेश करते हुए कह रहा है कि हमारे इस जगत् रूपी ब्रह्माण्ड में सूर्य अपने आकर्षण का केन्द्र होता है । इस कारण ही वह सब का धारक होता है अर्थात् सब लोग उसे धारण करते हैं । सब लोग सूर्य को क्यों धारण करते हैं ? इसका कारण है कि सूर्य प्रकाश का स्रोत होता है । जिस प्रकाश में हमारी आँख देखने की शक्ति प्राप्त करती है, वह प्रकाश हमें सूर्य से ही मिलता है । यदि सूर्य न हो तो हमारी आँख चाहे कितनी भी सुन्दर हो, साफ हो, उसमें देखने की शक्ति हो किन्तु सूर्य के प्रकाश के बिना यह आँख देख ही नहीं पाती । मानो उसमें देखने की शक्ति ही न हो । सूर्य के प्रकाश के बिना आँख कुछ भी तो नहीं देख सकती। इसलिए ही मन्त्र कह रहा है कि सूर्य अपने प्रकाश से सबके लिए धारक है ।

मन्त्र कहता है कि प्रजा में से जिस व्यक्ति में सूर्य के सामान गुण हों, उसे ही राजा के पद पर आसीन करना चाहिए । अर्थात् जो व्यक्ति सूर्य के सामान तेजस्वी हो । ब्रह्मचर्य से जिसने अपने शरीर को खूब तपा लिया हो । उसके मुख से, उसके आभा मंडल से एक विशेष प्रकार की आभा, एक विशेष प्रकार का तेज टपक रहा हो । एक ऐसा तेज टपक रहा हो, जिसके पास आने से सब प्रकार के दुरित इस प्रकार से भाग जावें जिस प्रकार सूर्य के प्रकाश में आने से सब प्रकार के रोगों के कीटाणु जल कर भस्म हो जाते हैं । इस प्रकार के व्यक्ति को ही अपना राजा चुनना चाहिए ।

मन्त्र आगे कहता है कि राजा पूर्ण रूप से ब्रह्मचर्य का सेवन करते हुए सब प्रकार की विद्याओं को पा गया हो अर्थात् वह सब प्रकार की विद्याओं का ज्ञाता हो । कोई ऐसी विद्या न हो जिसका उसे ज्ञान न हो । उसे इतने विशाल राज्य की प्रजा का पालन करना होता है और प्रजा भी वह जो अलग-अलग विषयों को जानती हो, अलग-अलग कार्य करती हो तथा राजा से यह आशा करती हो कि राजा उसके क्षेत्र को उन्नत करने, विकसित करने का कार्य करे ताकि उसका व्यवसाय आगे बढ़ सके । यदि राजा किसी एक विद्या को नहीं जानता होगा तो वह उस एक विद्या को

thearyasamaj.org

उन्नत करने का कार्य कैसे कर सकेगा ? इसलिए मन्त्र के अनुसार राजा सब विद्याओं का ज्ञाता हो तथा उन विद्याओं के प्रसार में उसकी रुचि हो ।

राजा के लिए यह भी आवश्यक है कि वह राज्य का धारक हो । इसका भाव यह है कि जिस व्यक्ति को हम राजसत्ता सौंपने जा रहे हैं उसमें इतनी शक्ति हो कि वह जब इस सत्ता को धारण करे तो उसका कोई विरोधी न हो, उसे सत्ता ग्रहण करते समय कोई ललकारने वाला न हो । वह शक्ति से संपन्न हो । यदि कोई व्यक्ति उसकी सत्ता को ललकारने का दुस्साहस करे तो उसमें इतनी शक्ति होनी चाहिए, इतना साहस होना चाहिए की वह इस प्रकार के व्यक्ति को कुचल कर रख दे । सब प्रकार के शत्रुओं का नाश करने की उसके पास शक्ति का होना आवश्यक होता है । इसी प्रकार की शक्ति के बिना उसका शासक रह पाना सम्भव ही नहीं होता ।

इस शक्ति से ही राजा सब प्रकार के स्त्रोतो का उत्पादक तथा सब प्रकार के सुखों की वर्षा कर सकता है । यदि शत्रु को देखकर राजा चूहे के सामान अपने बिल में घुस जावे तो शत्रु का सामना, शत्रु का मुकाबला कौन करेगा ? राजा के अभाव में प्रजा छिन्न-भिन्न हो जावेगी तथा शत्रु इस राज्य पर अपना अधिपत्य जमा लेगा । जब राज्य पर शत्रु आसीन हो जावेगा तो प्रजा सुखों के लिए तरसने लगेगी । सुख उसके लिए दिवास्वप्न बन जावेंगे । जिस प्रकार मुगलों तथा अंग्रेज के राज्य के समय भारत की जनता दुःखों से भर गयी थी उस प्रकार की अवस्था आ जावेगी। इसलिए राजा के पास इतनी शक्ति होना आवश्यक है कि जिससे वह अपनी प्रजा के सुखों को बढ़ा कर उसे प्रसन्न रख सके ।

इस सबके प्रकाश में मन्त्र कहता है कि माता अपने गर्भस्थ शिशु का पालन करने के लिए बड़ी सावधानी से चलती है, बड़ी सावधानी से बोलती है तथा बड़ी सावधानी से अपने जीवन का सब व्यापार करती है ताकि उसके गर्भ में पल रहे बालक को किसी प्रकार का कष्ट न हो तथा समय आने पर पूर्ण स्वास्थ्य के साथ इस संसार को देखे, इस संसार में जन्म ले । ठीक इस प्रकार ही राजा की प्रत्येक क्रिया प्रजा के सुख के लिए होती है । वह अपना प्रत्येक कार्य आरम्भ करने से पूर्व ही सोच लेता है कि उसके इस कार्य से प्रजा के किसी अंग को कष्ट तो नहीं होगा। किसी का अहित तो नहीं होगा । इसलिए प्रजापालक राजा का विद्वान् गुणों से सम्पन्न होना आवश्यक होता है ताकि वह अपनी प्रजा के हितों के अनुसार कार्य करे तथा मातृवत् ही गर्भस्थ शिशु के समान अपनी प्रजा का रक्षक हो ।

मन्त्र स्पष्ट संकेत करता है कि अपने राजा का चुनाव करते समय प्रजा यह अवश्य देख परख ले कि जिस व्यक्ति को वह अपना राजा चुनने जा रही है, उसमें कितनी मातृत्व शक्ति है ? वह माता के समान कितने गुणों का धारक है ? उसमें अपनी प्रजा से माता के समान स्नेह होगा या नहीं ? इस प्रकार के गुणों की परख करने के पश्चात यदि वह उसकी कसौटी पर खरा उतरता है, तब ही उसे राजा चुना जावे अन्यथा जनता को कभी सुख प्राप्त नहीं होगा ।

दूरभाष : ०१२०२७७३४००
मो० : ०९७१८५२८०६८

१०४, शिप्रा अपार्टमेन्ट,
कौशम्बी-२०१०१०, गाजियाबाद,

—o—

thearyasamaj.org

बच्चों का भविष्य एवं उनकी समस्याएँ

– श्रीमती मृदुला अग्रवाल

बच्चों का भविष्य तीन तरह की समस्याओं में उलझ कर रह गया है :—

१) दूरदर्शन, फेसबुक, इन्टरनेट, चलभाष इत्यादि ।

२) बाल्यत्रश्रम, ३) बाल यौन-शोषण ।

बचपन मानव का निर्माण-काल होता है । एक बालक सफल मनुष्य तभी बन सकता है, जब उसकी नींव सुदृढ़ हो । महर्षि दयानन्द जी ने ''सत्यार्थ-प्रकाश'' के द्वितीय समुल्लास में लिखा है कि बालकों का सही निर्माण माँ के गर्भ से ही आरम्भ हो जाता है । बच्चों को उच्च संस्कार देने के लिये तथा उनके शारीरिक, मानसिक एवं बौद्धिक विकास के लिये, माता-पिता को अपने हृदय की इच्छाओं पर अंकुश रखकर गर्भ के समय से ही मर्यादा का पालन करना चाहिये । जैसे—महाभारत में अभिमन्यु को चक्रव्यूह-भेदन की शिक्षा माता के गर्भ में ही प्राप्त हुई थी ।

''मही द्यौः पृथिवी च नऽइमं यज्ञं मिमिक्षताम्।

पिपृतां नो भरीमभिः।।'' — यजुर्वेद, अध्याय-१३, मन्त्र-३२।।

भावार्थ — हे माता-पिता ! जैसे बसन्त ऋतु में पृथिवी और सूर्य सब संसार का धारण, प्रकाश और पालन करते हैं, वैसे ही तुम दोनों अपनी संतानों को अन्न (शुद्ध आहार), विद्या-दान और उत्तम शिक्षा देकर पूर्ण विद्वान् पुरुषार्थी करो ।

आजकल हमारे देश एवं समाज की अवस्था शनैः शनैः पतन की ओर अग्रसर हो रही है। रात-दिन बलात्कार हो रहे हैं । चारों तरफ भ्रष्टाचार बढ़ रहा है । धन और विलासिता में लोग डूबे जा रहे हैं । भारतीय संस्कृति को भूलकर पाश्चात्य संस्कृति एवं सभ्यता की ओर झुकाव सबसे बड़ी बाधा बन गया है । बच्चों का भविष्य तो नष्ट होता जा रहा है । दूरदर्शन पर युवतियों का आधुनिकता के चक्कर में अपने नश्वर शरीर की नुमाइश एवं कामुकता की हद को पार कर जाना भारतीय वैदिक संस्कृति पर कलंक जैसा है । समाचार-पत्रों में, पत्रिकाओं में अश्लील व नंगी तस्वीरें, सबके घरों में हर उम्र के बच्चे देखते हैं, उन बच्चों के भावी सुचरित्र नागरिक बनने की संभावना को तिलाञ्जलि देना है ।

आधुनिक वैज्ञानिक यन्त्रों (फेसबुक, इन्टरनेट, चलभाष इत्यादि) से बालकों को एक तरफ उन्नति करने का अवसर मिला है तो दूसरी तरफ उससे नैतिक मूल्यों का पतन हुआ है । बालक के जीवन का सबसे अहम् स्थान स्कूल है । वहाँ का वातावरण सीधा उनके मन पर प्रभाव डालता है । उन्हीं स्कूलों में **''इन्टरनेट''** को अनिवार्य घोषित किया जा चुका है । इन्टरनेट पर पढ़ाई के अलावा

thearyasamaj.org

भी तो नाना प्रकार के अनुचित मार्ग पर ले जाने वाले आकर्षण हैं । इन सबकी वजह से बालकों का जीवन तो अनैतिकता के गर्त में जा गिरा है । ऐसी परिस्थिति में माता-पिता, आचार्य का उत्तरदायित्व होता है कि बच्चों को नैतिक मूल्यों की शिक्षा दें । अच्छे संस्कार देते हुए उनको सदाचार से युक्त, सुयोग्य एवं लायक बनावें । **''माता निर्माता: भवति''** माता बच्चे की प्रथम गुरु है । माता को उन्हें कुकर्मों से बचाना होगा, किसी भी अंग से कुचेष्टा न करने पावे ऐसा प्रयास करना होगा । उन्हें सत्यभाषण की आदत डालें, मादक-द्रव्यों से दूर रक्खें ।

ऋग्वेद, मंडल-७, सूक्त-२, मन्त्र-११ का भावार्थ :—

''हे विद्वान् ! जैसे सूर्य का प्रकाश दिव्य गुणों के साथ नीचे भी स्थित हम सबों को प्राप्त होता है और सत्य विद्या से युक्त उत्तम संतान वाली माता सुखपूर्वक स्थित होती है, वैसे ही विद्वान् हम सबों को, विशेषकर बालकों को, आप प्राप्त होकर अच्छी शिक्षा से सुखी कीजिये ।''

स्वस्थ सामाजिक वातावरण एक बालक के लिये बहुत ही महत्वपूर्ण है । परन्तु आजकल का आधुनिक समाज उसी बालक को ''बाल्य-श्रमिक'' बनाकर स्वयं को गर्वित महसूस कर रहा है । बाल्य-श्रम पूरे विश्व की समस्या है । बाल्य-श्रम का औद्योगिक क्रान्ति में भी महत्वपूर्ण स्थान रहा है । बच्चों को बाल्य, श्रमिक बनाने के दो मुख्य कारण हैं :— १) गरीबी और २) शिक्षा का अभाव। इन दोनों कारणों की वजह से, मजबूरी में, आज लाखों-करोड़ों की संख्या में इन मासूम एवं सरल बच्चों से हानिकारक रासायनिक पदार्थों के मध्य कल-कारखानों में, घरों में, चाय दुकानों में, ढाबा में, तरह-तरह के अत्याचारों को सहन करते हुए काम करवाया जा रहा है । बच्चे पूरे विश्व का भविष्य हैं । उन्हें कितनी जिम्मेवारियाँ सम्हालनी हैं — परिवार की, समाज की, राष्ट्र की एवं विश्व की भी । अगर बचपन में ही बाल्य-श्रमिक बन जायेंगे तो कैसे अच्छे तथा प्रतिष्ठावान नागरिक बन पायेंगे । भारत में Cry (Child Rights and you) के स्वयंसेवी इस समस्या का समाधान निकालने की चेष्टा तो कर रहे हैं । परन्तु सरकार का भी उत्तरदायित्व है कि गरीबी के कारण बच्चों की शिक्षा में अभाव न आवे ।

अथर्ववेद, काण्ड-२, सूक्त-२९, मन्त्र-३,४,५ के अनुसार माता-पिता प्रयत्न करें कि सन्तान उत्तम गृहस्थ बने, जितेन्द्रिय होकर अपने दोषों और दूसरे शत्रुओं का नाश करें । अन्नवान्, बलवान् एवं धनवान् बनें । विद्वान् लोग उचित शिक्षा से उनकी रक्षा करें । प्रकृति से उपकार ग्रहण करके संसार में प्रवेश करें एवं आनन्द भोगें ।

''बाल-यौन-शोषण'' बच्चों के लिये एक बहुत ही जटिल समस्या है । ज्यादातर घरवाले ही यह काम करते हैं । बच्चों को किस तरह सुरक्षित रक्खा जाये — यह एक बड़ा प्रश्न है । घर-घर में जाकर घरवालों को, बच्चों के माता-पिता को, स्कूलों में शिक्षकों को, अन्य वयस्कों को इस विषय में जानकारी देना बहुत जरूरी है । जिससे वे बच्चों की सुरक्षा करने को अपना कर्त्तव्य समझें

thearyasamaj.org

और उसको निभाने का हर सम्भव प्रयास करें । बच्चों को सतर्क करना होगा । उन्हें शरीर के गुप्त अंगों के बारे में प्रशिक्षण देना होगा, जिससे कोई उन अंगों को छुए तो वे निर्भीकता से दूसरों को बोल सकें । हमें इसके लिये बच्चों के साथ मित्रों जैसा व्यवहार करना होगा । उन्हें विश्वास दिलाना होगा कि जब भी उन्हें जरूरत हो हम उनकी मदद के लिये सर्वदा उपलब्ध रहेंगे । बच्चे निश्चयात्मक प्रशिक्षण के द्वारा आत्म-विश्वास एवं निर्भयता से अपने विश्वासपात्र को पहचानें वा चुनें तथा उनसे अपनी समस्या की चर्चा भी करें । उन्हें ये भरोसा रहे कि वे जब चाहे हमारे पास आ सकते हैं, अपनी गलतियों को भी बता सकते हैं । दरअसल, हमारा सामाजिक वातावरण कुछ ऐसा निर्मित है कि बच्चे बड़ों के सामने कुछ बोल नहीं पाते । बड़े जो करें वही सही है – यह बात बच्चों के मन में कूट-कूट कर भरी रहती है । इस वजह से बड़े ऐसा कार्य करें (यौन-शोषण का) तो भी बच्चे डर से कह नहीं पाते । उसका शिकार होते चले जाते हैं । यह कार्य एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी तक जारी रहता है । अगर बच्चों को बचपन में ही नियंत्रित न किया जाये या उनका डर न मिटाया जाये तो उनका सम्पूर्ण जीवन इससे प्रभावित होकर भावनात्मक एवं मानसिक प्रतिक्रियाओं से नष्ट हो सकता है । उन्हें यह अनुभूति न होवे कि उनके साथ विश्वासघात हुआ है । बच्चों का दुरुपयोग करने वाले व्यक्ति को चेतावनी देना जरूरी है । बच्चों को अपने माता-पिता से बातचीत करने का प्रोत्साहन मिलना चाहिये । आजकल माता-पिता को अपने बच्चों की बातें सुनने की फुर्सत नहीं मिलती या वे उनकी बातें सुनना ही नहीं चाहते । समस्याओं से मुँह न फेरकर, सकारात्मक विचारों के साथ हमें उसका समाधान निकालना होगा और बच्चों के जीवन को सुधारना होगा जो कि सम्भव है । लाखों-करोड़ों बच्चों की यह समस्याएँ हैं जो दुःखभरी हैं पर हैं सच्ची ।

स्वामी दयानन्दजी की आदर्श शिक्षा एवं वेदों के अध्ययन की आवश्यकता है । वेदों में सांसारिक एवं पारमार्थिक उन्नति दोनों का परिपूर्ण उपदेश प्रस्तुत है । स्कूल एवं कॉलेज में अगर वैदिक शिक्षा और संस्कृत भाषा का अध्ययन अनिवार्य कर दिया जावे तो एक सम्भावना की आशा की जा सकती है कि देर-सबेर बच्चों में धीरे-धीरे सुधार आ जावेगा । एकत्व, मित्रता, शान्ति, व्यवहारिक ज्ञान की जीवन में प्रधानता होगी । विद्यार्थियों में सद्गुणों का विकास करना माता-पिता, आचार्य एवं सम्बन्धियों का प्रमुख कर्त्तव्य है । आध्यात्मिक विचारशक्ति एवं प्रभु-भक्ति से उनके जीवन को विकसित करना होगा । वेद-विरुद्ध आचरण का निषेध कर, गुरु एवं विद्वान् लोग अपने ज्ञानरूपी प्रकाश से, राष्ट्र के भावी नागरिक अर्थात् बच्चों के भविष्य को समस्या-रहित करके चमका देवें ।

१९-सी, सरत बोस रोड़
कोलकाता-७०००२०
मो० : ९८३६८४१०५१

—o—

thearyasamaj.org

सूचना

आर्ष गुरुकुल महाविद्यालय, आबूपर्वत

निवेदन है कि आर्ष गुरुकुल महाविद्यालय, आबूपर्वत में वि०सं० २०४७ (सन् १९९०) को विधिवत् रूप से विद्याध्ययन-अध्यापन प्रारम्भ किया गया था । इस प्रकार से वि०स० २०७२ (सन् २०१५) को गुरुकुल में विद्याध्ययन-अध्यापन के पच्चीस वर्ष पूर्ण हो रहे हैं ।

अत: इस वर्ष दिनांक २९,३०,३१ मई को होने वाले वार्षिक उत्सव को गुरुकुल के रजत जयंती वर्ष के रूप में मनाया जायेगा । इस अवसर पर गुरुकुल से विद्याध्ययन कर चुके सभी स्नातकों का परिचय करवाया जायेगा । भविष्य की योजनाओं के विषय में जानकारी दी जायेगी ।

गुरुकुल में पंचमी कक्षा उत्तीर्ण १०से ११वर्ष आयु के स्वस्थ एवं मेधावी छात्रों को प्रवेश दिया जाता है, समस्त शिक्षा नि:शुल्क है ।

–स्वामी धर्मानन्द
देलवाडा, आबूपर्वत, जिला-सिरोही
पिन-३०७५०१ (राजस्थान)
ई-मेल : aryagurukulmtabu@gmail.com
मो० : ०९४१४५८९५१०
०८७६४२१८८८१

गुरुकुल आश्रम आमसेना

स्वामी दीक्षानन्द सरस्वती (पं० देशपाल दीक्षित) नहीं रहे ।

पंडित देशपाल जी का जन्म महाराष्ट्र के उस्मानाबाद जिले के वणजी ग्राम में हुआ था । उन्होंने आर्य समाज के सम्पर्क में आकर उन्होंने गुरुकुल झज्जर में आकर विद्याध्ययन किया । स्नातक बनकर बिहार या झारखण्ड के सिमडेगा में पं० हरिशरण के साथ वैदिक धर्म के प्रचार-प्रसार कार्य में लग गए । बिहार के उस पिछड़े इलाके में लगभग पचास वर्ष उन्होंने वैदिक धर्म का प्रचार किया। कुछ समय की बीमारी के पश्चात् ८३ वर्ष की आयु में उनका स्वर्गवास उनके भतीजी के पास हो गया । सूचना मिलने पर आर्य समाज सिमडेगा में शोक सभा का आयोजन किया गया । स्वामी धर्मानन्द सरस्वती जी गुरुकुल आश्रम आमसेना की उपक्रिति में सैकड़ों स्थानीय श्रद्धालुओं ने उनके शांति यज्ञ में भाग लिया और उन्हें श्रद्धाञ्जलि अर्पित की । इस प्रकार गुरुकुल आश्रम आमसेना में शोक सभा उन्हें भावभीनी श्रद्धाञ्जलि दी गयी ।

स्वामी व्रतानन्द सरस्वती, आचार्य
खरियार रोड़, जिला-नुआपड़ा
पिन-७६६१०४ (ओड़िसा)

आर्य समाज कलकत्ता, १९ विधान सरणी कोलकाता - ६ के लिए श्री राजेन्द्र प्रसाद जायसवाल द्वारा प्रकाशित तथा एशोशियेटेड आर्ट प्रिण्टर्स, ७/२, विडन रो, कोलकाता-६ में मुद्रित । मो. : ९८३०३७०४६३